इकाई 12 पर्यावरण और सतत विकास

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 वहन क्षमता

12.3 सतत विकास

- 12.3.1 वानिकी
- 12.3.2 जैवविविधता
- 12.3.3 कृषि
- 12.3.4 जल संसाधन
- 12.3.5 उद्योग
- 12.3.6 ऊर्जा
- 12.3.7 परिवहन

12.4 सतत विकास की रणनीतियां

- 12.4.1 पर्यावरण संबंधी प्रभाव आकलन (EIA)
- 12.4.2 प्राकृतिक संसाधन लेखा और बजटीकरण

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर एवं संकेत

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- 'विकास' का क्रमबद्ध अर्थ प्रस्तुत कर सकेंगे;
- यह बता सकेंगे कि 'सतत विकास' का क्या अर्थ है और किस प्रकार यह किसी भी सार्थक विकास प्रक्रिया का अंग है;
- 'वहन क्षमता' की धारणा को स्पष्ट कर सकेंगे तथा यह बता सकेंगे कि और किस प्रकार सतत विकास में पारिस्थितिक प्रणालियों की वहन क्षमता पर ध्यान देना शामिल है;
- उन तरीकों के विषय में बता सकेंगे जिनसे विकास प्रक्रिया सतत बन सकती है;
- अर्थव्यवस्था के कुछ प्रमुख क्षेत्रों के सतत विकास से संबंधित मुख्य मुद्दों की पहचान कर सकेंगे; और
- उन दो रणनीतियों के विषय में बता सकेंगे जिनके द्वारा परियोजनाओं, कार्यकलापों और नीतियों को पर्यावरण के अधिक अनुकूल बनाने के काम में लगाया जा सकता है।

12.1 प्रस्तावना

'विकास' विश्व भर में सरकारों और समाजों का एक प्रमुख उद्देश्य है। कई वर्षों से देशों और

विकासशील और विकसित वर्गों में बांटा जाता रहा है। हाल के वर्षों में 'विकासशील' और 'विकसित' देशों के वर्गीकरण के लिए क्रमशः 'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा है। बहरहाल भाषा चाहे जो भी हो, मुख्य अभिप्राय विकास के स्तर से ही है।

'विकास' शब्द दरअसल किसी वास्तविक स्थिति के बजाय एक प्रक्रिया से संबंधित है और 'विकसित' शब्द भी भ्रामक है क्योंकि इससे लगता है कि देश एक ऐसे स्तर पर पहुंच गया है जिसके आगे और विकास की आवश्यकता ही नहीं है। परंतु यह सही नहीं है। समाज और देश कितने ही विकसित क्यों न हों और अधिक विकास कर सकते हैं। केवल उनसे कम विकसित देशों की तुलना में ही वे विकसित हैं।

विकास की धारणा का रोचक इतिहास रहा है। आरंभ में जब देशों के प्रतिरूप के तौर पर इसका उपयोग किया जाता था तो इसका तात्पर्य लगभग पूरी तरह आर्थिक विकास अथवा संवृद्धि का प्राप्त स्तर था। अतः देशों को प्रत्यक्ष रूप से उनकी आर्थिक सम्पन्नता के अनुपात में ही विकसित माना जाता था। यूरोपीय देशों, जिनके पास अनेक उपनिवेश थे और फलस्वरूप ढेर सारा राजस्व था, को उन देशों की अपेक्षा अधिक विकसित कहा जाता था जिनके पास उपनिवेश नहीं थे और जो इसी कारण आर्थिक तौर पर निर्धन थे।

फिर भी शताब्दी के परिवर्तन के समय, विशेष रूप से प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के बाद, कई लोग विकास की इस व्याख्या का विरोध करने लगे। ऐसा महसूस किया गया कि आर्थिक संवृद्धि को तब तक विकास नहीं माना जा सकता जब तक उससे समानता को बढ़ावा न मिले। परिणामस्वरूप, ऐसे देश को विकसित नहीं कहा जा सकता जिसके 'साम्राज्य' के एक भाग में निर्धन उपनिवेश हों। इसी प्रकार, यदि किसी देश में थोड़े से लोग सम्पन्न और बहुत से निर्धन हों तो फिर अत्यधिक कुल सम्पत्ति होने पर भी उसे विकसित नहीं माना जा सकता।

हाल के वर्षों में इस सोच को 'सामाजिक अथवा मानव विकास सूचक' में रूपांतरित किया गया है जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, पेयजल की उपलब्धि, पोषण स्तर और नागरिक अधिकार शामिल हैं। **संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP)** अब एक **मानव विकास रिपोर्ट** प्रकाशित करता है जिसमें विभिन्न देशों को इन सामाजिक और मानव सूचकों की उपलब्धि के स्तर के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है।

60 के दशक में विकास से संबंधित एक और किस्म की चिंता व्यक्त की जाने लगी। हम अपने प्राकृतिक संसाधनों के साथ क्या कर रहे हैं – इस विषय में बढ़ती जागरूकता के साथ लोग यह पूछने लगे कि क्या ऐसे देश को विकसित माना जा सकता है जिसकी संवृद्धि प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के विनाश पर आधारित हो। इस विचार के तहत कि प्राकृतिक संसाधन सबसे ज़्यादा–वित्तीय संसाधनों से भी ज्यादा बुनियादी हैं – संवृद्धि की कोई भी प्रक्रिया जो इन संसाधनों को नष्ट करेगी, मध्यम से दीर्घकाल में उसकी असफलता निश्चित है। ऐसी रणनीति के सतत (sustainable) होने की संभावना नहीं है। प्राकृतिक संसाधनों के नाश से वर्तमान में तो विकास हो सकता है, परंतु अर्थव्यवस्था का भविष्य खतरे में पड़ जायेगा। ऐसी ही जागरूकता से सतत विकास की धारणा ने जन्म लिया है।

अतः विकास को इस प्रकार पुनःपरिभाषित किया गया कि उसका अर्थ एक ऐसी आर्थिक और सामाजिक संवृद्धि से है जिससे न केवल समानता बढ़े अपितु दीर्घकाल तक सतत भी रहे। 'सतत विकास' की धारणा का उपयोग विकास की पुरानी परिकल्पना और नये सतत स्वरूप के बीच भेद करने के लिए किया जाने लगा।

सतत विकास को ऐसे विकास के रूप में वर्णित किया गया है जो :

"भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की सामर्थ्य के साथ समझौता किए बिना वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करता हो" (आवर कॉमन फ्यूचर, 1987)।

12.2 वहन क्षमता

सतत विकास के अर्थ को पूरी तरह समझने के लिए हमें पहले वहन क्षमता की धारणा को समझना होगा। किसी जीव या प्रणाली की वहन क्षमता विभिन्न प्रकार की मांग को पूरा करने और दबावों को झेलने की ऐसी सामर्थ्य है जिससे न तो उसे स्थायी नुकसान हो और न ही भविष्य के दबावों को सहने और मांग को पूरा करने के साथ उसे कोई समझौता करना पड़े।

एक पारिस्थिति प्रणाली के संदर्भ में इसका अर्थ होगा – निष्कर्षण (Extraction) (उसकी उत्पादन क्षमता) को झेलने और बिना अवक्रमित हुए (उसकी समावेशनीय क्षमता (its assimilative capacity) प्रदूषण का मुकाबला करने की उसकी क्षमता।

इसको बेहतर समझने के लिए इस बात पर ध्यान दीजिए कि मनुष्यों की भी वहन क्षमता होती है। हम सुरक्षित रूप से उतनी ही मात्रा में रक्तदान कर सकते है जितना हमारा शरीर जल्दी लौटा दे। इसी प्रकार अपने स्वास्थ्य को स्थायी नुकसान पहुंचाए बिना हम कुछ मात्रा में कैफ़ीन या अन्य प्रदूषक तत्वों का समावेश कर सकते हैं। परंतु यदि हमारे शरीर से सारा खून बहा दिया जाये अथवा हम शरीर की समावेशनीय क्षमता से बाहर की किस्मों और मात्रा में प्रदूषकों से प्रभावित होते हैं तो हमें गम्भीर हानि हो सकती है। ऐसी स्थिति में हमारे उत्पादन करने और काम करने की क्षमता क्षीण हो जायेगी। यदि अर्से तक यह बहाव अथवा शारीरिक प्रदूषण जारी रहे तो संभवतः हमारी मृत्यु हो जायेगी।

ऐसा ही प्रकृति के साथ होता है। उदाहरण के लिए एक नदी को लीजिए। नदी में यह क्षमता होती है कि यदि उसमें से कुछ मात्रा में जल निकाल कर मानव उपभोग में लगा दिया जाये तो भी नदी बिना किसी स्थायी नुकसान के अपना काम कर सकेगी। परंतु यदि हम नदी का बहुत सारा या तमाम पानी बहा दें तो पारिस्थितिक व्यवस्था के रूप में नदी समाप्त हो जायेगी अथवा उसे स्थायी क्षति पहुंचेगी। इसके साथ ही, नदी में कुछ प्रदूषकों को आत्मसात करने और उनका जैविक अवक्रमण (biodegrade) करने की क्षमता होती है ताकि वह पारिस्थितिक प्रणाली को नुकसान न पहुंचाएं। परंतु यदि हम नदी की समावेशन क्षमता (assimilative ability) के बाहर की किस्मों और मात्राओं में प्रदूशक फैंकते रहें तो नदी को स्थायी क्षति पहुंचेगी। वह नदी नहीं रहेगी।

निम्नांकित रेखाचित्र से देखा जा सकता है कि हम और प्रकृति परस्पर कैसे प्रभावित होते हैं और किस प्रकार उसकी वहन क्षमता का प्रयोग करते हैं।

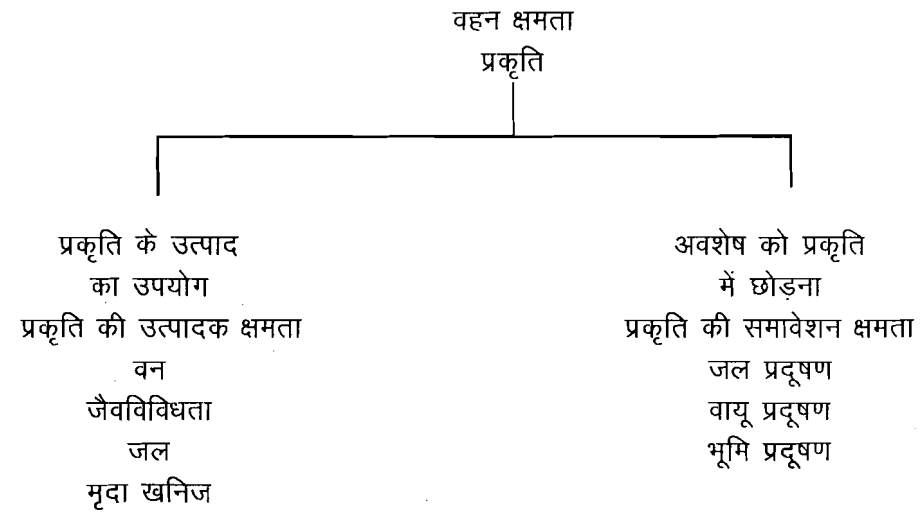

अतः सतत विकास सुनिश्चित करने का एक उपाय यह सुनिश्चित करना है कि आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया प्रकृति से उसकी पुनः उत्पन्न करने की क्षमता से अधिक न ले और प्रकृति को उसकी समावेशन क्षमता से अधिक प्रदूशित न करे।

किसी संसाधन की वहन क्षमता अनंत नहीं होती है। बेहतर प्रबंधन और प्रौद्योगिकी द्वारा विभिन्न प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रणालियों की वहन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिए

आनुवंषिक (genetic) इंजिनीयरी के प्रयोग से, विशेषकर बेहतर बीज और फसलों की तेज़ी से बढ़ने वाली किस्मों के प्रयोग से पोषित वनस्पति और उनको उपजाने वाली भूमि की उत्पादिता में वृद्धि की जा सकती है। उर्वरक और सिंचाई के द्वारा भी भूमि की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार पारिस्थितिक प्रणाली (eco-system) की समावेशन क्षमताओं को भी बढ़ाया जा सकता है। हाल ही में केंचुओं के साथ वर्म कल्चर नामक सफल परीक्षण किये गये जिनसे पता लगा कि वनस्पति खाद के गड्ढों में केंचुओं को डालने से पारिस्थितिक प्रणाली की अपशिष्ट पदार्थों को नष्ट करने की और जीवअवक्रम योग्य पदार्थों का समावेश करने की क्षमता बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है।

धरती पर रहने वाले प्राणियों में एकमात्र मनुष्य ही ऐसा है जिसमें पारिस्थितिक प्रणालियों की वहन क्षमता का उस हद तक अतिक्रमण करने की सामर्थ्य है जहां यह पारिस्थितिक प्रणालियां अवक्रमित (degraded) या नष्ट (destroyed) हो जाएं। बाकी प्रकृति में प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग रोकने के लिए अंतर्निमित प्रतिबंध और संतुलन हैं। पशुओं द्वारा संसाधनों का उपयोग उन संसाधनों की उपलब्धता द्वारा निर्धारित होता है।

इस प्रकार, उदाहरण के तौर पर यदि किसी विशेष इलाके में हिरणों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि वे पुनः उत्पन्न किये जा सकने की सीमा से अधिक घास का उपभोग करने लगते हैं तो घास की उपलब्धता कम हो जाएगी और इसके फलस्वरूप हिरणों की आबादी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार यदि किसी क्षेत्र में बाघों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने आहार के लिए आवश्यक अन्य शिकार पशुओं को उनके पुनः उत्पन्न हो सकने से अधिक तेज़ी से खाने लगते हैं तो शीघ्र ही इन बाघों के लिए पर्याप्त भोजन नहीं रहेगा और उनकी आबादी घटने लगेगी। आबादी तेज़ी से उस बिंदु तक पहुंच जाएगी जहां बिना किसी स्थायी नुकसान के बाघों की संख्या तथा उनके शिकार पशुओं की संख्या में पुनः संतुलन स्थापित हो जाएगा। यह क्रम बिना रूके चलता रहता है। निम्नांकित रेखा चित्र में इस संबंध को चित्रित किया गया है।

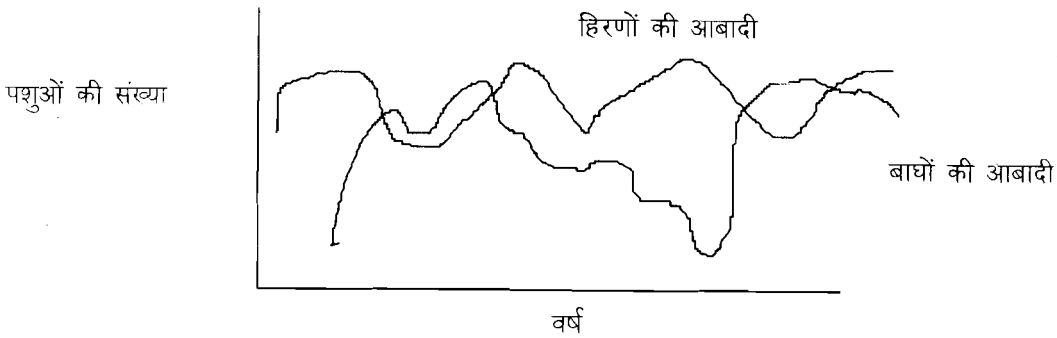

प्रकृति में कुछ भी अपशिष्ट (waste) नहीं है। एक प्राणी का अपशेष दूसरे का भोजन है और आखिर में वह पारिस्थितिक प्रणाली के एक या दूसरे अंग का आगत बन जाता है। अतः कई तरह के कीटाणु और सूक्ष्म जीव विभिन्न पशुओं की विष्ठा में पैदा होते हैं और उसी पर जीते हैं। यह कीटाणु और सूक्ष्म जीव इस विष्ठा को उस बिंदु तक जैवअवक्रमित करते हैं जहां वह मृदा के लिए पोषाहार बन जाता है। इसी प्रकार मरे हुए पौधे और पेड़, यहां तक कि पशुओं की लाश भी अन्य प्राणियों के लिए निवास या भोजन बन जाते हैं और इस प्रक्रिया में पारिस्थितिक प्रणाली द्वारा उनके समावेशन में सहायक होते हैं।

अपने उपभोग की गति, उपभोग को सुसाध्य बनाने के लिए विकसित प्रौद्योगिकी और उसके द्वारा परित्यक्त अपशेष के स्वरूप और मात्रा के कारण केवल मनुष्य में ही अपने अधीन पारिस्थितिक प्रणालियों की वहन क्षमता के अतिक्रमण की प्रवृत्ति होती है। समस्या इस तथ्य के मद्देनज़र बदतर हो जाती है कि मनुष्य में ही अपने निकटतम पारिस्थितिक प्रणाली के नष्ट होने पर अपना ध्यान अन्य दूरस्थ पारिस्थितिक प्रणालियों पर लगा कर स्वयं को अपने निकटतम पर्यावरण के अवक्रमण के परिणामों से बचाने की क्षमता है। अतः ऐसे साधनों और तरीकों को सोच निकालना महत्वपूर्ण है जिनसे बाकी प्रकृति के साथ मनुष्य की पारस्परिक क्रिया के सतत स्तर को बनाये रखा जा सके।

बोध प्रश्न 1

1) वहन क्षमता से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

2) वहन क्षमता को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 सतत विकास

सतत विकास कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे रातों–रात हासिल किया जा सके। सततता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक परियोजना, प्रत्येक कार्यकलाप, प्रत्येक स्कीम और प्रत्येक नीति को तब तक उत्तरोत्तर पर्यावरण के अनुकूल बनाया जाना चाहिए जब तक वह स्वयं सतत न बन जाये और सम्पूर्ण सततता को बढ़ावा दे। क्षेत्रों के अनुसार सूचीबद्ध कुछ मुद्दे नीचे दिये गये हैं जिन पर सतत विकास की खोज के दौरान हमें ध्यान देना होगा।

12.3.1 वानिकी

वानिकी क्षेत्र में और उसके ज़रिये सतत विकास का अर्थ है कि हम वनों से उतने ही लट्ठों और अन्य पदार्थों की फसलें लें जितना वह पुनर्उत्पन्न कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक वन 2% प्रति वर्ष की दर से बढ़ता है तो इसकी कटाई (Harvesting) इस बढ़त से अधिक नहीं होनी चाहिए। यह विवेकपूर्ण वित्तीय प्रबंधन के सिद्धांत जैसा ही है जिसमें लोगों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने बचत की पूंजी में से न खाएं बल्कि उसके ब्याज पर बसर करें।

प्रकृति की पूंजी से नहीं बल्कि उसके ब्याज से लो।

हम क्या लेते हैं और कैसे लेते हैं – यह भी महत्वपूर्ण है। यदि हम जवान और बढ़ते हुए वृक्षों की फसल लेते हैं तो दीर्घकाल में वन नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार, यदि हम वन के एक भाग से फसल लेने पर ध्यान केंद्रित करें तो समूचे तौर पर पुनःउत्पन्न करने की क्षमता से अधिक न निकालने पर भी, वह हिस्सा जहां से हमने फसल ली है, बंजर हो जायेगा।

12.3.2 जैवविविधता

जैवविविधता अथवा जैवविज्ञानिक विविधता को पारिस्थितिक प्रणालियों, प्रजातियों और जीन की भिन्नताओं के रूप में पारिभाषित किया गया है। अब यह माना जाता है कि जैवविविधता मानव कल्याण और जीवन को बनाये रखने के लिए निर्णायक है।

पृथ्वी पर पारिस्थितिक प्रणालियों की बहुत सी किस्में हैं । उदाहरण के लिए सागर और महासागर, नदियां और झीलें, वन, मरुस्थल, घासस्थली, द्वीप और पर्वत मौजूद हैं। इन वर्गों में

भी उपवर्ग पाये जाते हैं। उदाहरण के रूप में, भारत में सोलह प्रमुख किस्मों के वन हैं और इनकी सैंकड़ों उपकिस्में हैं। इसी प्रकार उष्ण सागर और शीतोष्ण सागर हैं, शीत और ऊष्ण मरुस्थल हैं और विभिन्न प्रकार की पर्वत श्रृंखलाएं और घासस्थलियां हैं। पारिस्थितिक प्रणाली के स्तर पर जैवविविधता का अर्थ है पारिस्थितिक प्रणालियों की विविधता।

प्रत्येक पारिस्थितिक प्रणाली में अनेक प्रजातियां होती हैं। मनुष्य इन्हीं प्रजातियों में से एक है। परंतु उसके अलावा बाघ, शेर, हाथी, पीपल के पेड़, देवदार के पेड़, गुलमोहर और नीम के पेड़, मोर, कौआ, मधुमक्खी, मक्खी, इत्यादि अन्य प्रजातियां भी हैं। प्रजातियों के स्तर पर जैवविविधता का अर्थ है प्रजातियों की विविधता।

प्रत्येक प्रजाति में व्यक्तिगत भिन्नता होती है। उदाहरण के तौर पर मनुष्यों में यद्यपि हम सभी एक प्रजाति के है तथापि हममें से प्रत्येक शारीरिक और मानसिक तौर पर एक दूसरे से भिन्न हैं : जीन विविधता/अन्य प्रजातियों के व्यक्तिगत सदस्यों में भी ऐसी ही भिन्नताएं हैं। जीन के स्तर पर जैवविविधता का अर्थ है समान प्रजाति के सदस्यों के बीच विविधता।

जैवविविधता के संरक्षण का निहितार्थ यह सुनिश्चित करना है कि पारिस्थितिक प्रणालियों, प्रजातियों और जीन के बीच विविधता प्राकृतिक स्तर से कम न हो जाये और किसी भी परिस्थिति में कोई भी पारिस्थितिक प्रणाली अथवा प्रजाति लुप्त न हो जाये।

जैवविविधता के संरक्षण के महत्वपूर्ण होने के कई कारण हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कारणों को नीचे वर्णित किया गया है।

औषधि : विश्व में प्रयोग की जाने वाली औशधियों (विशेषकर गैर–एलोपेथी पद्धतियों की) का एक बड़ा अनुपात पौधों और पशुओं से प्राप्त किया जाता है। इसके बावजूद हमने ज्ञात प्रजातियों में से केवल एक प्रतिशत की उनके औशधीय अथवा अन्य गुणों के विषय में जांच की है। और ऐसी प्रजातियों में से जिनके पृथ्वी पर मौजूद होने की संभावना है, अब तक शायद केवल बीस प्रतिशत की खोज और पहचान हो पाई है। यदि ऐसी प्रजाति जिसकी अब तक पहचान नहीं हो पाई है या जिसके औषधीय और अन्य उपभोगों की जांच नहीं हुई है, पृथ्वी से लुप्त हो जाये तो एड्स और कैंसर जैसी कई बीमारियों, जिनसे विश्व आज पीड़ित है, की दवाएं हमेशा के लिए खो जाएंगी।

ऐसी प्रजाति के लुप्त होने पर भी गंभीर खतरे हैं जिसकी हम जांच कर चुके हैं और जो उपयोगी भी नहीं पाई गई हैं। इसका कारण यह है कि ऐसी प्रजाति आज ज्ञात बीमारियों के निदान में तो उपयोगी नहीं हैं। लेकिन इस बात की क्या गारंटी है कि भविष्य में, कुछ वर्ष पूर्व एड्स की तरह, नये रोग नहीं उत्पन्न होंगे। और तब हमें पता लगेगा कि उस बेकार मानी गयी प्रजाति के लुप्त होने के साथ इस रोग़ का इलाज भी खत्म हो गया। अतः यह सुनिश्चित करने के लिए कि हमारे विकल्प पहले ही समाप्त न हो जाएं, हमें प्रत्येक और सभी प्रजातियों के संरक्षण की व्यवस्था करनी होगी। यह जैवविविधता का विकल्प मूल्य है।

कृषि : हमारे द्वारा पैदा किये गये सभी पौधे और पालतू बनाये गये सभी पशु जंगली प्रजातियों से प्राप्त किये गये हैं। नई नसलों को उत्पन्न करने और पालने के विकल्प विकसित करने के लिए हमें जंगली प्रजातियों का संरक्षण सुनिश्चित करना होगा। साथ ही, यदि उत्पादित अथवा पाली गई नसलों को कीड़ों और रोगों से प्रतिरक्षित करना है तो प्रतिरक्षित नसलों को जन्म देने के लिए अक्सर जंगली प्रजातियों का उपयोग करना होगा।

जैवप्रौद्योगिकी : यह एक नया क्षेत्र है जो विश्व के सम्मुख निर्धनता, भूख और रोग जैसी प्रमुख समस्याओं के समाधान में सभी तरह की प्रौद्योगिकी में शायद सर्वाधिक सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है। जैवप्रौद्योगिकी के 'कच्चा माल' हैं – जंगली पौधे और पशु। विभिन्न पौधों और पशुओं से ही जीन प्राप्त किये जाते हैं जो जेनेटिक इंजनियरी के ज़रिए कई पुरानी समस्याओं के हल की नई आशाएं जगाते हैं। उदाहरण के तौर पर, भारत की हरित क्रांति जेनेटिक इंजनीयरी का ही एक नतीजा थी और चाहे कितनी ही समस्याएं उससे जुड़ी हों, उसके परिणामस्वरूप भारत में खाद्य पदार्थों की उत्पादिता में अवश्य वृद्धि हुई है। लेकिन यदि जंगली प्रजातियां लुप्त हो

जाएं तो फिर जेनेटिक इंजनीयरी का यह 'कच्चा माल' उपलब्ध नहीं रहेगा। अतः हमें यह विकल्प भी खुला रखना होगा।

जीवन का जाल (Web of life) : समस्त जीवन मकड़ी के जाल की तरह अन्तःसम्बद्ध है। प्रत्येक प्रजाति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से एक दूसरे पर निर्भर है। अतः यदि एक प्रजाति लुप्त हो जाये तो सभी प्रजातियां इससे प्रभावित होंगी। तत्काल इसका असर शायद न महसूस हो, लेकिन अंततः प्रतिक्रियाओं का सिलसिला शुरू हो जाता है।

इन तथा अन्य कारणों से सतत विकास के लिए जैवविविधता का संरक्षण महत्वपूर्ण है।

12.3.3 कृषि

मृदा और जल संसाधनों, जो कृषि का आधार हैं, का भी सतत उपयोग किया जाना आवश्यक है। मृदा को वायु तथा जल द्वारा कटाव (erosion) का और अवक्रमण (degradation) का खतरा होता है। मृदा के वनस्पति आवरण के नष्ट हो जाने पर मृदा को आवरण द्वारा दिया गया बंधन भी हट जाता है। इस खुली हुई मृदा को कटाव का खतरा पैदा हो जाता है। इसके अलावा, वनस्पति आवरण के हटने से मृदा पर सूर्य की किरणों का सीधा असर पड़ता है और वह जल्दी सूख जाती है। इससे उसकी उत्पादिता में गिरावट आती है और कटाव का खतरा बढ़ जाता है। हरे आवरण द्वारा उत्पन्न किया गया पत्तों और वनस्पति का कचरा मृदा को समृद्ध बनाता है और उसे खाद्य–मिट्टी प्रदान करता है। वनस्पति आवरण के गायब होने पर मृदा का भी अवक्रमण हो जाता है।

मिट्टी के कटाव को रोकने के पर्याप्त उपाय किये बिना ढलानों पर खेती करने और जोतने से भी मृदा को गंभीर नुकसान पहुंचता है। मृदा के अवक्रमण का एक और कारक है – फसलों का अनुपयुक्त प्रतिरूप। यदि फसलों के बीच मृदा को आराम न मिले तो उसकी उत्पादिता गिर जाती है। साथ ही, यादे मृदा के पोषक तत्वों की प्राकृतिक उर्वरकों द्वारा भराई न हो तो मृदा का अवक्रमण होता है।

हालांकि कुछ समय के लिए रासायनिक उर्वरकों द्वारा मृदा की उत्पादिता को बढ़ाया जा सकता है, लेकिन दीर्घकाल में वह मृदा के सभी सूक्ष्ममात्रिक (micro organisms) तत्वों की भराई नहीं कर पाते और इस कारण दीर्घकालीन उत्पादिता बनाये नहीं रख पाते। अन्ततः गिरती हुई उत्पादिता को बनाये रखने के लिए बढ़ती हुई मात्र में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करना पड़ता है। इससे न केवल उत्पादिता में गिरावट आती है बल्कि खेती की वित्तीय लागत में भी खासी वृद्धि होती है।

रासायनिक कीटनाषक दवाओं का आवश्यकता से अधिक प्रयोग अथवा अनुपयुक्त कीटनाषक दवाओं के प्रयोग से भी मृदा का अवक्रमण होता है। ऐसी कीटनाशक दवाएं फसलों के कीड़ों को मारने के अलावा मृदा को पुनर्जीवित करने के लिए आवश्यक विभिन्न कीड़ों, पक्षियों और सूक्ष्मजीवों को भी मार देती हैं। ऐसे कीटनाशकों के बचे हुए तत्व पानी और वातावरण में घुल जाते हैं जिससे पर्यावरण का गंभीर अवक्रमण होता है और मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लापरवाही से इस्तेमाल किये जाने पर यह फसलों को भी दूषित करते हैं और स्वास्थ्य के लिए अतिरिक्त खतरा बन जाते हैं।

जलाक्रांति (Water logging) मृदा के लिए एक और खतरा है। सिंचाई के खंड में इस समस्या पर विस्तार से चर्चा की जायेगी। पर यहां इतना कहना काफी है कि बढ़ते हुए भू–जल स्तर से हुए लवण और क्षार प्रदूषण के कारण उत्पादक भूमि के विस्तृत क्षेत्र बंजर हो गये हैं।

स्रवण–क्षेत्रों (Catchment areas) में वनों की कटाई के परिणामस्वरूप बाढ़ और सूखे का प्रकोप होता है जिससे हमारी मृदा की उत्पादिता को खतरा और बढ़ जाता है। जहां स्रवण क्षेत्र में जंगलों और वनस्पति का आवरण खत्म हो जाता है, वहां मृदा को वायु और पानी के कटाव का खतरा बन जाता है। ग्रीष्मकालीन सूर्य उसे सुखा देता है और वर्षा होने पर वह पानी के साथ बह जाती है। ढलानों पर वनस्पति आवरण के अभाव के फलस्वरूप भूमिगत जलभृतों (under-ground aquifers) का अपर्याप्त पुनर्आवेशन (re-charging) होता है। इसका अर्थ है कि जहां

स्रवण क्षेत्रों का अवक्रमण हो, वहां सरिताओं और नदियों में वर्षा काल के दौरान वनस्पतियुक्त स्रवण–क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक जल होगा। इसके अतिरिक्त उपरिमृदा (stop soil) और अन्य मलबा जो वनस्पति के कारण पहाड़ों पर जमा रहता है अब बंजर भूमि से बहने लगता हैं। इसके परिणामस्वरूप निकले जल और गाद की मात्रा इतनी अधिक होती है कि नदीतल में समा नहीं पाती और बाढ़ में बदल जाती है।

इसके अतिरिक्त, जब गाद मैदानी इलाकों में पहुंचती है और नदी की रफ्तार कम हो जाती है तो यह गाद नदीतल में बैठ जाती है और पूरी नदी इससे भर जाती है। इससे नदीतल की क्षमता कम हो जाती है और पानी का सामान्य बहाव भी नदी में नहीं समाता। इस प्रकार भी बाढ़ आ जाती है।

इसके विपरीत, सूखे मौसम में जलभृतों (aquifers) के सही पुनर्आवेशन न होने के कारण नदियों में पानी कम हो जाता है और सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है। आरंभ में बाढ़ के कारण प्रभावित क्षेत्रों में भूमि की गुणवत्ता बढ़ जाती है क्योंकि यह अधिग्रहण क्षेत्रों से उपरिमृदा ले आती है। परंतु कुछ ही वर्षों में उपरिमृदा कट जाती है और केवल रोढ़ी जमा हो जाती है। इससे मृदा की उत्पादिता में खासी गिरावट आ जाती है। (देखिए निम्नांकित चित्र)।

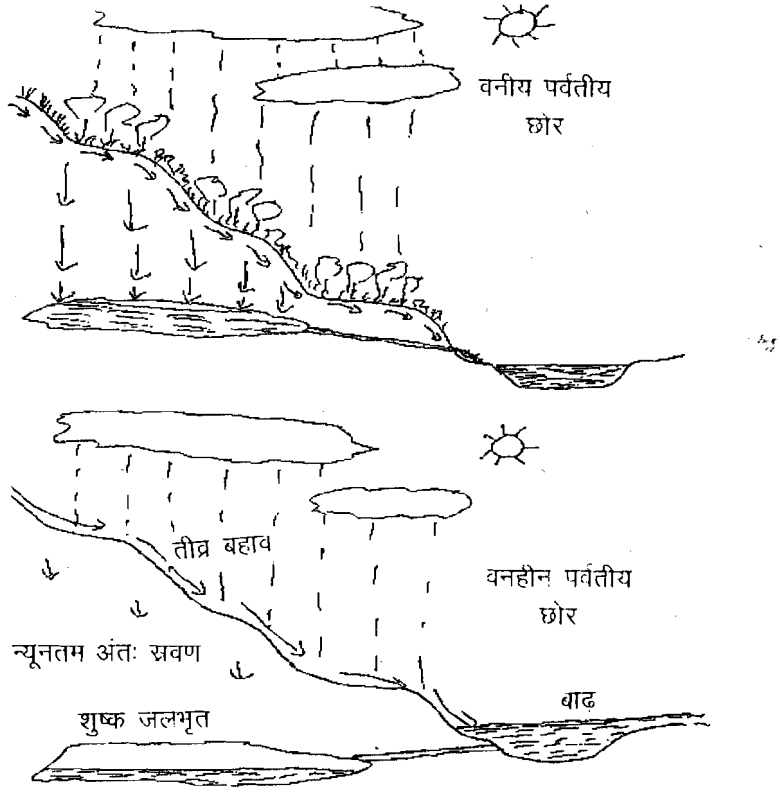

सतत कृषि के लिए एक और खतरा है जंगली जैवविविधता का विनाश। आज हम जितने भी पौधे उगाते हैं वे जंगल से ही प्राप्त किये गये हैं। हरित क्रांति में शामिल संकर जैसी किस्मों में जिन नसलों को उगाया जाता है, उन्हें जंगली पौधों के जीन से प्राप्त किया जाता है। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और उगाये जाने वाले पौधों की नई नस्लों के विकास का विकल्प खुला रखने के लिए हमें जंगली किस्मों के पौधों के संरक्षण की व्यवस्था करनी होगी। वर्तमान में हमारे द्वारा प्रयोग की जा रही किस्मों के सम्मुख खतरों का सामना करने के लिए भी जंगली किस्मों की आवश्यकता होगी। (देखें जैवविविधता पर खंड)

12.3.4 जल संसाधन

वायु के बाद शायद जल ही मानव संसाधनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इतिहास के आरंभ से

संसाधनों के ठिकानों के अनुसार हुआ है और इतिहास गवाह है कि कई समाज और संस्कृतियों का इस कारण नाश हुआ कि वे अपने जल संसाधनों को ठीक से नहीं संभाल सके।

आवश्यक रूप से जल पुनर्जीविति (renewable) करने योग्य संसाधन है और इसका अधिकांश पुनर्जीवन वार्षिक अथवा अर्ध–वार्षिक चक्रों के अधीनस्थ होता है। जल (अथवा जलविज्ञान संबंधी) चक्र जल को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता है और इसकी कुछ मात्रा को एक रूप से दूसरे रूप में बदलता है। मानसून की हवाएं हिंद महासागर से नमी को पकड़ती है और इस नमी को वृष्टिपात के रूप में देश भर में बांटती हैं। हिमालय में हिम और हिमनदियां भी पिघलती हैं जो हमारी बहुत सी नदियों को भरती हैं।

जल के सतत उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए इस बात की व्यवस्था करनी होगी कि जलविज्ञान संबंधी चक्र में गड़बड़ न हो। आरंभ में इसका अर्थ यह सुनिश्चित करना है कि वर्षा के प्रतिरूप में कोई रुकावट न आये। हालांकि अब तक वनों की कटाई और समष्टिगत जलवायु से जुड़े परिवर्तनों के बीच संबंधों को ठीक से नहीं समझा गया है, फिर भी यह मानने के विश्वसनीय प्रमाण हैं कि वनों की कटाई से व्यष्टिगत तौर पर वर्षा के प्रतिरूपों में गंभीर रूकावट आ सकती है।

परंतु अधिक महत्वपूर्ण बात यह है, जैसा कि वर्णित किया जा चुका है, स्रवण क्षेत्रों में वनस्पति आवरण के अवक्रमण से जल चक्रों में रुकावट आती है जिसके कारण बाढ़ या सूखे की स्थिति पैदा होती है। हिमालय के ऊपरी खंडों में वनों की कटाई और अवक्रमण से व्यष्टिगत जलवायु विषयक परिवर्तन होते हैं जिनसे बर्फ और उसके पिघलने की व्यवस्था प्रभावित होती है। फलस्वरूप जलविज्ञान संबंधी चक्र में रुकावट आती है।

अतः पहला कार्य यह सुनिश्चित करना है कि जहां भी आवश्यकता पड़े, वहां जल सही मात्रा और सही समय पर उपलब्ध हो। दूसरा कार्य इस बात की व्यवस्था करना है कि यह जल साफ और पौष्टिक हो। साधारणतया वर्षा के रूप में अथवा बर्फ या उसके पिघलने से प्राप्त जल शुद्ध और प्रदूषण–रहित होता है। परंतु कुछ किस्म के वायु प्रदूषक भूमि पर पहुंचने से पहले ही वर्षा जल को दूषित कर सकते हैं। ऐसे प्रदूषण की एक आम किस्म को 'अम्ल वर्षा' कहते हैं। अम्ल वर्षा उस समय होती है जब वातावरण सल्फ़र डाईऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइडों से प्रदूषित होता है जो वर्षा जल से मिल कर सलफ्यूरिक एसिड और नाइट्रिक ऐसिड बनाते हैं। ऐसी वर्षा मृदा और हरियाली के पोषण के स्थान पर उनका नाश कर देती है। यूरोप और उत्तरी अमरीका में हज़ारों एकड़ वन अम्ल वर्षा से 'जल' गये हैं। वहां मृदा आम्लिक हो गई है और अपनी अधिकांश उत्पादिता खो बैठी है। नदियां और झील प्रदूषित हो गये हैं जिससे मछलियों की विस्तृत रूप से मृत्यु हुई है।

वातावरण से जुड़े प्रदूषण के अलावा जल को भूमि पर भी प्रदूषण का सामना करना पड़ता है। गाद, घरेलू अपषिष्ट (wastes), कृषि और उद्योगों से निकली गंदगी हमारे झीलों, झरनों, नदियों और समुद्र तक को प्रदूषित करती है। ऐसा दूषित जल मानव उपयोग के योग्य नहीं रहता। भारत में व्याप्त जल प्रदूषण के कारण अधिकांश सतही जल मानव उपयोग के अयोग्य है। इसका बड़ा हिस्सा नहाने योग्य भी नहीं है और कुछ भाग को खेती में भी इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। प्रदूषित जल के उद्योग में इस्तेमाल करने पर मशीन को नुकसान पहुंचने अथवा औद्योगिक प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का खतरा होता है। प्रदूषित जल वातावरण को भी अवक्रमित (degrades) करता है और यह उस जल में रहने वाले या उसका इस्तेमाल कर रहे वनस्पति और जीव जंतुओं को खास तौर पर प्रभावित करता है।

धरती की सतह पर जल का भंडारण और निकासी जलाशयों में अथवा इनके ज़रिए की जाती है। इन प्राकृतिक जलाशयों की अपनी ही पारिस्थितिक प्रक्रिया होती है। इनमें झील, तालाब, समुद्र, महासागर, चष्में (ponds), झरने और नदियां शामिल हैं। ये पानी के भंडारण पात्र या गलियारे ही नहीं बल्कि सैकड़ों जीवित प्राणियों के प्राकृतिक आवास भी हैं, जैसे : मछली, कीड़े, पौधे, सांप, सरी सृप और जलचर। ये जलाशय पानी में ठीक उसी प्रकार शक्ति का संचार करते हैं जिस प्रकार ये स्वयं उससे प्रभावित होते हैं। पानी इनमें जब ठहरता है या इनसे गुजरता है तो उसमें ऑक्सीजन का संचार होता है, सफाई होती है और खनिजों का समावेश

होता है। यदि जल में प्रदूषक तत्व हों तो पारिस्थितिक प्रणालियां सक्रिय हो कर उन्हें जैव–अवक्रमित करती हैं और जल को दोबारा साफ कर देती हैं। सरिताओं और नदियों में चट्टानों और ढालों से पानी में ऑक्सीजन के मिश्रण में सहायता होती है जिसे सांस द्वारा प्राप्त कर पानी में रहने वाली मछलियां और अन्य जंतु जीवित रहते हैं।

जब जल प्रदूषकों का समावेश करने की अपनी क्षमता से अधिक दूषित हो जाता है तो जलीय और समुद्रीय पारिस्थितिक प्रणालियों की विभिन्न क्रियाएं संकट में पड़ जाती हैं। इसी प्रकार, यदि ऐसे जलाशयों से भारी मात्रा में पानी निकाला जाये तो भी पारिस्थितिक प्रणाली प्रभावित होती है और सामान्य रूप से कार्य नहीं कर पाती है। जहां लंबी अवधि तक प्रदूषण अथवा निष्कर्षण चलता रहता है, वहां पारिस्थितिक प्रणाली को असुधार्य क्षति पहुंचती है और कभी कभी तो अत्यंत साधारण जीवों के भरन–पोषण करने की क्षमता भी नष्ट हो जाती है। मछलियों और अन्य जीवों के नुकसान के अलावा इसका यह अर्थ है कि जलाशय अब पानी को साफ करने में समर्थ नहीं हैं और मानव उपयोग के लायक नहीं हैं अथवा दोबारा उपयोग से पहले उन्हें कृत्रिम सफाई की खर्चीली प्रक्रिया से गुजरना होगा।

दूषित जल उपभोक्ताओं के लिए भी खतरा पैदा करता है। पर्यावरण के लिए खतरे की व्याख्या की जा चुकी है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए भी खतरा पेश करता है और ऐसा अनुमान है कि भारत में प्रति दिन 10,000 बच्चे पानी से जुड़ी बीमारियों से मर जाते हैं। साथ ही, भारी मात्रा में गाद वाला पानी मनुष्य द्वारा निर्मित ढांचों को नुकसान पहुंचाता है। इससे बांधों और तालाबों में गाद जम जाती है और पनबिजली के टरबाइनों को क्षति पहुंचती है।

बढ़ती जनसंख्या और इसके फलस्वरूप पानी की बढ़ती मांग के मद्देनज़र पानी, विशेष रूप से साफ किये गये पानी के उपयोग और फिजूलखर्ची पर नियंत्रण की उच्च प्राथमिकता है। आवश्यकता इस बात की है कि पानी की मांग पक्ष को व्यवस्थित किया जाये। जल उपयोग के वर्तमान प्रतिरूप न केवल अनुचित हैं बल्कि अपव्ययी और असतत (unsustainable) हैं। शहर में समृद्ध वर्ग के लोग प्रत्येक बार टंकी फ्लश करने में 12 से 16 लीटर साफ किये गए पानी को बहा देते हैं जब कि उसी शहर में गरीबों को एक बाल्टी पानी के लिए घंटों कतार में खड़ा होना पड़ता है। हमारे मकानों और उद्योगों के डिज़ाइन में कुशल जल उपयोग की अनदेखी हुई है और लाखों लीटर पानी टपकते नलों अथवा दकियानूसी (outdated) औद्योगिक प्रक्रियाओं में नष्ट हो जाता है।

12.3.5 उद्योग

औद्योगिक संवृद्धि को आर्थिक विकास के केंद्र के रूप में देखा जाता है। परंतु उद्योग के पर्यावरण के अनुसार सतत होने और संपूर्ण सतत विकास में उसके योगदान के लिए उसका पर्यावरण स्नेही (friendly) होना अथवा 'पालने से कब्र' (from cradle to grave) तक हरा होना आवश्यक है। इसका अभिप्राय यह है कि उद्योग के स्थापित किये जाने और कच्चा माल के निष्कर्षण से लेकर ऊर्जा के प्रजनन, उसके उत्पादन की प्रक्रिया और उत्पाद के स्वरूप के साथ साथ प्रत्येक संयत्र के बंद किये जाने ओर प्रत्येक उत्पाद के अंतिम विक्रय तक उस क्षेत्र को हरा ही रहना होगा।

यदि औद्योगिक क्षेत्र पर्यावरण स्नेही न हो तो प्रतिस्थापित किये जा सकने से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर और समावेश क्षमता से अधिक अपशेष निकाल, दोनों ही तरह से यह पर्यावरण पर असह्यय दबाव डालता है। प्राकृतिक संसाधनों के अकुशल प्रयोग और अनावश्यक प्रदूषण से उद्योग उन्हीं प्राकृतिक संसाधनों से अतिरिक्त उत्पादन के अवसर खो देता है और परिणामस्वरूप प्रदूषक तत्वों को भी अतिरिक्त मात्रा में छोड़ता है। अतः जो उद्योग हरे नहीं हैं वे न केवल पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं बल्कि अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन के अवसर भी गवां देते हैं।

भारत में जल और बिजली दोनों ही पर सबसिडी दी जाती है – यानी उनकी असली लागत, खासतौर पर पर्यावरण पर खर्च शामिल किये जाने के बाद की लागत, उपभोक्ता से नहीं वसूली जाती है। जल और बिजली ही दो ऐसे संसाधन हैं जिनका अवसर फिजूलखर्ची के साथ

इस्तेमाल किया जाता है। अतः उद्योगों और औद्योगिक क्षेत्र का पर्यावरण संबंधी लेखा करने की व्यवस्था करना अत्यावश्यक है। ऐसी लेखा व्यवस्था को सार्थक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं को प्रदान करने में इस्तेमाल किये जाने वाले जल और बिजली की मात्रा के मानक निर्धारित करना ज़रूरी है।

बेहतर यह होगा कि प्रदूषण पर रोक लगाई जाये बजाय इसके कि प्रदूषण होने के बाद उस पर नियंत्रण किया जाये। प्रदूषण पर रोक लगाने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन की तकनीक भी हरित हो। हरित औद्योगिकी न केवल पर्यावरण के लिए अच्छी है बल्कि आर्थिक तौर पर भी लाभदायक है। पर्यावरण स्नेही प्रौद्योगिकी में उत्पादन की प्रति इकाई पानी और बिजली की खपत कम होती है और अपशेष भी कम निकलता है। अतः कच्चे माल और अपशेष के निकास की लागतें भी बिजली और पानी पर व्यय के साथ–साथ न्यूनतम होती हैं। इसके अलावा अनेक हरित प्रक्रियाएं उत्पादन प्रक्रियाओं को ऐसे जोड़ती है कि एक प्रक्रिया के अपशेष दूसरी प्रक्रिया का कच्चा माल बन जाते हैं। अतः उद्योगों को इस प्रकार बसाया और बनाया जा सकता है कि अपशेष की मात्रा न्यूनतम हो और कच्चे माल को खरीदने की लागत में गिरावट लाई जाये।

चिंता का एक और क्षेत्र है – डिब्बाबंदी (packaging)। अब क्योंकि कचरा जमा करना और उसकी निकासी की लागत उद्योग से नहीं बल्कि सार्वजनिक लागत से पूरी की जाती है अतः कई उद्योग अपने उत्पादों को पर्यावरण के प्रतिकूल पदार्थों से डिब्बाबंद करते हैं। प्लास्टिक तथा अन्य विशाक्त अथवा ग़ैर–जैवअवक्रमित (non-biodegradable) पदार्थों को डिब्बाबंदी के लिए इस्तेमाल किये जाने को नियंत्रित करना आवश्यक है। उत्पादों को ऐसा होना चाहिए कि वे अथवा ऐसे पदार्थ जिनसे उन्हें बनाया गया है, दोनों ही अपने जीवनकाल की समाप्ति के बाद दोबारा इस्तेमाल किये जा सकें। इससे न केवल कच्चे माल की बचत होगी बल्कि कचरा नियंत्रण की समस्या भी कम होगी।

12.3.6 ऊर्जा

ऐतिहासिक तौर पर बिजली परियोजनाओं के साथ महत्वपूर्ण सामाजिक और पर्यावरण संबंधी लागतें जुड़ती आई हैं। ऐसी परियोजनाओं की भारत में दो आम किस्में हैं पनबिजली और तापबिजली परियोजनाएं।

पनबिजली परियोजनाएं : पनबिजली परियोजनाओं, विशेष रूप से जिनमें बड़े बांध शामिल हैं, के अधिक महत्वपूर्ण पर्यावरण संबंधी और सामाजिक असर होते हैं। ऐसे कुछ मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैं :

बांध के धारा-प्रतिकूल (Upstream of the dam)

1) **स्रवण क्षेत्र का अवक्रमण :** यह परियोजना के कारण हो सकता है, कुछ सीमा तक परियोजना के कार्यकलापों के कारण और कुछ सीमा तक स्रवण क्षेत्र के एक भाग के हौज़ में डूब जाने के बाद बकाया स्रवण क्षेत्र पर अतिरिक्त दबाव के कारण। क्षेत्र की जैवविविधता पर इसके प्रतिकूल प्रभाव के अलावा इसके स्थानीय लोगों के जीवन–निर्वाह की आवश्यकताओं के लिए भी अक्सर गंभीर निहितार्थ होते हैं।

2) निस्संदेह अवक्रमित (degraded) स्रवण क्षेत्रों का, चाहे वे किसी भी कारण से अवक्रमित हुए हों, बांध परियोजना पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। अन्य बातों के साथ–साथ यह निम्नलिखित तरह से होता है :

   - गाद का बोझ बढ़ने के द्वारा
   - अनियमित जलअपवाह उत्पन्न किये जाने से
   - जल प्रवाह में अचानक वृद्धि से अतिरेह (surplus) संकट की संभावना पेश कर

3) अप्रवाही जल क्षेत्र के निर्माण की आशंका होती है जिसके फलस्वरूप बाढ़ और विनाश का खतरा होता है।

4) साथ ही प्रतिकूल धारा में पानी की कम उपलब्धता का खतरा होता है क्योंकि हौज़ को भरने के लिए पानी की ज़रूरत होती है।

हौज़ (reservoir) और परियोजना स्थल पर :

5) धूल प्रदूषण

6) किनारे की स्थिरता को खतरा

7) रोगवाहकों का संभावित पोषण

8) जलीय पारिस्थितिक प्रणाली और जैवविविधता पर प्रतिकूल प्रभाव

9) मत्स्य क्षेत्रों पर संभावित प्रतिकूल प्रभाव

10) जल के खनिज प्रदूषण की संभावना समेत जल की गुणवत्ता पर प्रभाव

11) वनस्पति और जीव–जंतुओं का जलमग्न होना और विनाश

12) कृषि भूमि का जलमग्न होना

13) चारागाहों का जलमग्न होना

14) स्थानीय ऊर्जा की लकड़ी ओर लकड़ी के अलावा अन्य वन्य उत्पादों के स्रोतों का जलमग्न होना

15) हौज़ द्वारा प्रेरित भूकंपन

16) प्रतिकूल व्यष्टिगत जलवायु परिवर्तन

17) मानव विस्थापन

अनुधारा (Downstream)

18) अनुधारा में जलीय पारिस्थितिक प्रणाली और जैवविविधता पर प्रतिकूल प्रभाव

19) अनुधारा में मत्स्य क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव

20) अनुधारा में जल उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव

21) अनुधारा में जल प्रदूषण स्तरों पर प्रतिकूल प्रभाव, विशेष रूप से नदी के घटे हुए प्रवाह के कारण

22) खारे जल के प्रवेश की संभावना

23) जल के अचानक छोड़े जाने से उत्पन्न खतरा

14) बांध की खराबी से ख़तरा

कमांड क्षेत्र (बहुउद्धेशीय परियोजनाओं में)

25) जलमग्नता और खारेपन का खतरा

26) रोगवाहकों के पोषण की आशंका

दुर्भाग्यवश भारत और विश्व के अन्य भागों में ऐसी बहुत सी परियोजनाएं हैं जिनमें इन प्रतिकूल प्रभावों में से एक या अधिक पाये जाते हैं।

भारत में पनबिजली परियोजनाओं की उनके पर्यावरण संबंधी और सामाजिक प्रभावों के विषय में अक्सर सही जांच नहीं होती । अतः उनकी पर्यावरण संबंधी और सामाजिक व्यवहार्यता स्पष्ट रूप से साबित नहीं हो पाती। इसके अलावा सामाजिक और पर्यावरण संबंधी प्रभावों को कम

करने के उपाय भी अपर्याप्त हैं। साथ ही पर्यावरण संबंधी और सामाजिक लागतों के आकलन और उन्हें घटाने के काम बहुधा बहुत देर से आरंभ किये जाते हैं और इन्हें तेज़ी से समाप्त कर दिया जाता है ताकि परियोजना के कार्यान्वयन में देरी न हो।

हाल के वर्षों में पनबिजली परियोजनाओं को इस अनुबंध के साथ शर्तबंद मंजूरी देने की दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति रही है कि पर्यावरण संबंधी आकलन और प्रतिकूल प्रभावों का न्यूनीकरण एक साथ किया जाये। ऐसी मंजूरी का लाभ प्राप्त करने वालों में कुछ हैं गुजरात में सरदार सरोवर परियोजना, मध्यप्रदेश में इन्दिरा सागर नर्मदा परियोजना और उत्तर प्रदेश में टेहरी परियोजना।

ऐसी शर्तबंद मंजूरियों का निहितार्थ यह है कि परियोजना को उसके पर्यावरण संबंधी प्रभावों के आकलन से पहले ही आरंभ कर दिये जाने की अनुमति मिल जाती है और फलस्वरूप उसकी व्यवहार्यता साबित हो जाती है। इसका सामान्यतया यह भी अर्थ ही कि आकलन सही ढंग से नहीं किया जाता और न्यूनीकरण उपायों में इतनी देरी हो जाती है कि वे निष्प्रभावी हो जाते हैं।

पुनर्वास : पनबिजली परियोजनाएं जलमग्न होने वाले क्षेत्रों के निवासियों को भारी नुकसान पहुंचाती है जिससे हज़ारों की संख्या में ये लोग बेघर हो जाते हैं। हाल के दिनों तक पुनर्वास नीतियां अत्यंत अमानवीय थीं जिनके अंतर्गत विस्थापितों को उनके घरों, रोज़ी–रोटी और विरासत के बदले एक छोटी सी रकम पकड़ा दी जाती थी और खुद अपनी देखभाल करने को कहा जाता था। हाल ही में इस सब को बदलने का गंभीर प्रयास किया गया है। कुछ नई परियोजनाओं, खासकर गुजरात की सरदार सरोवर परियोजना, में 'परियोजना प्रभावित लोगों' को भूमि के बदले भूमि और अन्य सुविधाएं दी गई हैं।

इसके बावजूद परियोजना प्रभावित लोगों, जिनमें अधिकांश निर्धन ग्रामीण और जनजातियों के सदस्य हैं, ने जो कीमत अदा की है, वह भयंकर है जबकि पैदा की गई बिजली का लाभ अधिकतर सम्पन्न ग्रामीण और शहरी जनसंख्या को पहुंचता है।

कोयले पर आधारित ताप बिजली परियोजनाएं : यद्यपि तापबिजली परियोजनाओं के पर्यावरण संबंधी और सामाजिक प्रभाव बांधों जितने नाटकीय नहीं हैं फिर भी वे महत्वपूर्ण हैं। विशेषरूप से उस स्थिति में जब प्रभावों का आकलन 'झूले से कब्र' तक किया जाये, अर्थात, आकलन कोयले के खनन और बिजली सयंत्र को उसे पहुंचाये जाने तक के प्रभाव समेत किया जाये।

ताप बिजली घरों के प्रमुख पर्यावरण संबंधी और सामाजिक प्रभाव निम्नलिखित हैं :

निर्माण अवस्था

1) लोगों का विस्थापन

2) धूल प्रदूषण

3) स्थानीय स्तर की बाधा

4) वनस्पति और जीव–जंतुओं का विनाश

परिचालन अवस्था

5) वायु प्रदूषण

6) जल प्रदूषण

7) जल की निकासी

8) भूमि प्रदूषण, मुख्य रूप से उड़ती हुई धूल या राख के ज़रिये

9) ध्वनि प्रदूषण

10) व्यष्टिगत जलवायु परिवर्तन

दुर्भाग्यवश ताप बिजलीघरों का उनके पर्यावरण संबंधी और सामाजिक प्रभावों के लिए अक्सर सही ढंग से आकलन नहीं किया जाता और विरले ही वैकल्पिक स्थानों अथवा प्रौद्योगिकी की खोज की जा रही है।

ऐसे ताप बिजलीघरों के अनेक उदाहरण मौजूद हैं जिन्हें पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर ठीक से विचार किये बिना पर्यावरण संबंधी मंजूरी के लिए प्रस्तुत कर दिया गया। कुछ प्रमुख उदाहरणों को नीचे वर्णित किया गया है।

ढोलपुर ताप बिजली परियोजना, राजस्थान

यह बिजली परियोजना चम्बल नदी के किनारे राष्ट्रीय चम्बल शरण–क्षेत्र के निकट और आंशिक रूप से उसके भीतर स्थित है। पर्यावरण मूल्यांकन समिति के इस आशय के प्रयास असफल रहे कि राज्य सरकार इस बिजलीघर को कुछ ही किलोमीटर दूर स्थानांतरित करे ताकि शरण–क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभावों का न्यूनीकरण किया जा सके। परिमाणस्वरूप, कई वर्षों तक परियोजना को मंजूरी नहीं दी गई और अभी हाल में आरंभिक स्थान पर ही मंजूरी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई परंतु बहुत सख्त पर्यावरण संबंधी शर्तों के साथ। यदि आरंभ में ही परियोजना को अधिक उपयुक्त स्थान पर अंतरित (shift) कर दिया जाता तो समय की बरबादी और पर्यावरण के बचाव से संबंधित खर्चों से बचा जा सकता था।

कयमकुल्लम बिजली परियोजना, केरल

यह परियोजना केरल राज्य में नाजुक कायल (backwaters) व्यवस्था के निकट स्थित है। परियोजना में कायल से मिट्टी निकालने पर ध्यान दिया जा रहा है ताकि परियोजना स्थल की भराई का सामान मिल सके। इस तरह मिट्टी निकालने पारिस्थितिक प्रणाली के रूप में कायल नष्ट हो जायेगी और इसका क्षेत्र में मत्स्य पालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यहां भी परियोजना स्थल को कुछ किलोमीटर सरकाने के प्रयास असफल रहे। अतः परियोजना के मंजूरी की सिफारिश नहीं की गई। बाद में पर्यावरण और वन मंत्रालय ने अपनी ही मूल्यांकन समिति की सिफारिशों को रद्द करते परियोजना को मंजूरी दे दी। परंतु यदि परियोजना पूरी हो जाये तो इसकी पर्यावरण लागत स्वीकार योग्य नहीं होगी।

सामाजिक और पर्यावरण प्रभावों के आधार पर ताप बिजलीघरों से संबंधित शायद तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दे हैं:

1) **संयंत्र का स्थान :** अनुपयुक्त स्थान का मतलब है भारी पर्यावरण और सामाजिक लागतें तथा परियोजना को आर्थिक तौर पर गैर–व्यवहार्य बनाये बिना इन लागतों को पर्याप्त रूप से घटाने में असमर्थता।

2) **पानी का उपयोग और निकासी :** देश के अधिकांश भागों में जल की कमी के कारण बिजलीघरों द्वारा जल के उपयोग के फलस्वरूप स्थानीय आबादी को अधिक और कभी–कभी गंभीर संकट का सामना करना पड़ता है।

3) **फ्लाइ ऐश को फेंकना :** पर्यावरण, भूमि और मानव स्वास्थ्य के लिए फ्लाइ ऐश शायद एकमात्र सबसे बड़ा खतरा है।

12.3.7 परिवहन

वायु प्रदूषण स्तरों, विशेष रूप से शहरी वायु प्रदूषण स्तरों में परिवहन क्षेत्र का महत्वपूर्ण योग है। इसके प्रमुख कारण हैं: शहरी इलाकों में वाहनों का केंद्रीकरण, व्याप्त प्रौद्योगिकी, वाहनों के रख–रखाव की खराब स्थिति, ईंधन की घटिया किस्म और कभी कभी स्थानीय जलवायु–विषयक पारिस्थितियाँ।

हमारे अधिकांश शहरों में वायु प्रदूषण स्तर, खासकर प्रलंबित विविक्त तत्व (SPM-Suspanded Particle Matter) के आधार पर निर्धारित सीमा से बहुत अधिक है। कुछ नवीन आंकड़े नीचे दिये गये हैं।

औसत वार्षिक SPM
(ug/m3 में)
विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुशंसित मानक 75 ug/m3

आगरा	451.93	पटना	230.91
मुम्बई	226.00	पुणे	226.07
दिल्ली	543.00	कलकत्ता	394.00
धनबाद	364.64	सूरत	283.81
लुधियाना	380.17	वाराणसी	489.23

स्रोत : राष्ट्रीय पर्यावरण इन्जीनियरिंग शोध संस्थान तथा केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की रिपोर्टस

पिछले कुछ वर्षो में सरकार ने समस्या के हल के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। उसने मोटरवाहन उत्सर्जन मानकों की घोषणा की है और ऐसी व्यवस्था आरंभ की है जिसके अंतर्गत मोटरवाहनों को नियमित रूप से प्रदूषण जांच करानी पड़ती है। महानगरों में ऐसे कारों के विक्रय पर रोक लगा दी है जिनमें केटेलिटिक कन्वर्टर लगे नहीं हों। सीसा रहित पेट्रोल का इस्तेमाल शुरू किया गया है। आपूर्तित ईधन की किस्म में सुधार, मोटर वाहन प्रौद्योगिकी में उन्नति, पैट्रोल पंपों पर खुले तेल की बिक्री पर प्रतिबंध और दिल्ली जैसे शहरों में 15 वर्ष से पुराने सार्वजनिक वाहनों के चलने पर रोक लगाने के भी प्रयास किये जा रहे हैं।

फिर भी, जब तक सड़क पर वाहनों की संख्या बढ़ती रहेगी समस्या और गंभीर ही होती जायेगी। एकमात्र सतत उपाय है सार्वजनिक परिवहन में सुधार जिससे निजी वाहनों के इस्तेमाल और टैक्सी और तिपहिये वाहनों जैसे व्यक्तिगत सार्वजनिक परिवहन की मांग कम होगी। इसके साथ ही बेहतर और अलग अलग ईधन तथा अधिक हरित टैक्नालोजी के विकल्पों की खोज में रहना आवश्यक है।

कस्बों और शहरों के बीच तथा देश के आरपार यात्रा और परिवहन के कुछ बहुत महत्वपूर्ण विकल्प अब उपलब्ध नहीं हैं। यदि सही तरह संचालित किया जाये तो नदी परिवहन यात्रा का अत्यंत पर्यावरण स्नेही तरीका हो सकता है। दुर्भाग्यवश हमारी बहुत सी नदियों में इतनी गाद भर गई है कि इस विकल्प की संभावना नहीं रही है। फिर भी यदि स्रवण क्षेत्र उपचार और वनीकरण के ऊपर वर्णित तरीके लागू किये जायें तो नदियों और अन्य जलमार्गो से गाद निकालना फिर संभव हो सकेगा और उन्हें लोगों और माल को लाने ले जाने के लायक बनाया जा सकेगा।

रेल परिवहन भी सड़क परिवहन से बेहतर है। इसके बावजूद पिछले कुछ दशकों में रेल परिवहन के बजाय सड़क परिवहन के विकास पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। इस रणनीति पर भी पुनर्विचार आवश्यक है।

बोध प्रश्न 2

1) जैव विविधता (Bio-diversity) से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

2) सतत विकास से संबंधित जल संसाधन के क्षेत्र में मूलभूत मुद्दों को बताइए।

.....

.....

3) जल आधारित बिजली परियोजनाओं से जुड़ी सामाजिक एवं आर्थिक लागतों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

12.4 सतत विकास की रणनीतियां

विकास की प्रक्रिया को अधिक हरित और पर्यावरण की दृष्टि से सतत बनाने में यह सुनिश्चित करना शामिल है कि प्रत्येक क्षेत्र में और क्षेत्र के भीतर प्रत्येक परियोजना, स्कीम और कार्यकलाप पर्यावरण स्नेही हो और ऐसे विकास की प्रक्रिया में योगदान दे, जो सततशील हो।

ऐसी परियोजनाओं और कार्यकलापों के पर्यावरण संबंधी प्रभावों के आकलन और उनकी पर्यावरण विषयक व्यवहार्यता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न तरीके और उपकरण उपलब्ध हैं। इनमें से दो हैं : पर्यावरण संबंधी प्रभाव आकलन और प्राकृतिक संसाधन बजटीकरण और लेखा।

12.4.1 पर्यावरण संबंधी प्रभाव आकलन Environmental Impact Assessment (EIA)

किसी परियोजना अथवा कार्यकलाप के EIA तैयार करने के अंतर्गत एक पर्यावरण संबंधी प्रभाव वक्तव्य तैयार करना और फिर परियोजना अथवा कार्यकलाप के अपेक्षित प्रभावों का आकलन शामिल है।

पर्यावरण संबंधी प्रभाव वक्तव्य (EIS) में आमतौर पर उन कार्यकलापों और क्रियाओं की सूची होती है जिनका पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके बाद इन्हें प्रकृति तथा पर्यावरण के विभिन्न तत्वों पर इनके प्रभाव की गंभीरता के आधार पर विवेचित किया जाता है। उदाहरण के लिए एक प्रस्तावित बिजलीघर का EIS – Environmental impact statement) कुछ इस प्रकार का होगा :

पर्यावरण निर्धारक

कार्यकलाप	वायु गुणवत्ता	जल उपलब्धता	जल गुणवत्ता	भूमि	मृदा	भूजल	स्थानीय निकासी
स्थान की सफाई	L	L	L	H	H	L	H
भूमि की भटाई	L	L	M	H	H	L	M
निर्माण सामग्री को लाना ले जाना	H						M
भवन निर्माण	H			M	M		
जल प्रस्राव		H	H			H	H
जल निकासी		M	H			M	H
फ्लाय ऐश की निकासी	H	H	H	H	H	H	H
502 की निकासी	H		M		M		H
कोयले का परिवहन	H			H	H		H

H = उच्च प्रभाव, M = मध्यम, L = निम्न, रिक्त स्थान = कोई प्रभाव नहीं

इस वक्तव्य में दिये गये प्रभावों का आकलन विभिन्न कारकों पर आधारित है। इसका उद्धेश्य यह निर्धारित करना है कि प्रस्तावित परियोजना अथवा कार्यकलाप पर्यावरण की दृष्टि से व्यवहार्य है कि नहीं और तदनुसार पर्यावरण संबंधी मंजूरी दिये जाने के योग्य है कि नहीं। इसका निर्णय करने के लिए विभिन्न प्रश्नों पर विचार किया गया है। इनमें शामिल हैं – क्या अपेक्षित प्रतिकूल प्रभावों से बचना या न्यूनीकरण संभव है? अंतिम प्रभाव कितने तेज़ होते हैं? प्रभावित पारिस्थितिक प्रणाली कितनी मूल्यवान अथवा विशिष्ट है? और क्या प्रस्तावित कार्यकलाप अथवा परियोजना से होने वाले लाभ को देखते हुए इस प्रकार के प्रभाव उचित हैं?

12.4.2 प्राकृतिक संसाधन लेखा और बजटीकरण

हाल के समय तक राष्ट्रीय नियोजन अभ्यासों में पर्यावरण संबंधी लागतों पर शायद ही ध्यान दिया जाता था। इसका कारण यह है कि नियोजन का काम वित्त और अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ करते हैं और वे इस कार्य को मूल रूप से वित्तीय अथवा आर्थिक संदर्भ में ही करते हैं। लेकिन प्राकृतिक संसाधन मानव संसाधनों में अत्यंत मूलभूत हैं, निश्चित रूप से वित्तीय और आर्थिक संसाधनों से भी कहीं अधिक मूलभूत।

विश्व भर में तीव्र पर्यावरण अवक्रमण (degradation) के मद्देनज़र पिछले कुछ दशकों में कई देशों ने स्पष्ट अनुभव किया है कि जब तक पर्यावरण लागतों को उनकी राष्ट्रीय लेखा प्रणाली में शामिल नहीं किया जाता तब तक उनके अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य की सही तस्वीर उभर कर नहीं आयेगी। कदाचित इसी से प्रेरित हो कर भारत सरकार ने सतत विकास से संबंधित नीति की घोषणा में संसद में प्रति वर्ष एक प्राकृतिक संसाधन बजट पेश करने की वचनबद्धता व्यक्त की है।

साथ ही भारत सरकार ने राष्ट्रीय पर्यावरण कार्यवाही कार्यक्रम (NEAP) तैयार किया है और वह एजेंडा-21 की पक्षधर है। ये दोनों दस्तावेज़ सतत विकास के मॉडल की ओर सरकार के रुझान के संकल्प को दोहराते हैं।

उत्तर के देशों में पर्यावरण संबंधी अर्थशास्त्र अब एक लोकप्रिय और तेज़ी से बढ़ता हुआ विषय है। दुर्भाग्यवश, इन देशों में विकसित मॉडल हमेशा भारत के लिए उपयुक्त नहीं होते। इसके बावजूद उत्तर के कई देश और बहुत सी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां भारत और अन्य देशों द्वारा प्राकृतिक संसाधन लेखा के उनके मॉडल स्वीकार कराने की दिशा में खूब प्रयत्नशील रही हैं।

राष्ट्रीय संसाधन लेखा की आवश्यकता ऊपरी तौर पर राष्ट्रीय संसाधन निर्धारकों को राष्ट्रीय लेखा पद्धतियों से जोड़ने की इच्छा से निकली लगती है। इसका अर्थ यह है किसी देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुमान वहां प्रति वर्ष प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल और प्राप्ति को प्रतिबिंबित करते हैं। विशेष परियोजनाओं और कार्यकलापों के लिए राष्ट्रीय संसाधन लेखा पद्धति का अर्थ है कि प्राकृतिक संसाधनों की वित्तीय और आर्थिक लागत परियोजना की व्यवहार्यता का आकलन करने के लिए किये गये लागत हितलाभ विश्लेषण में प्रतिबिंबित होंगे।

दुर्भाग्यवश, प्राकृतिक संसाधन लेखाओं को बनाने के लिए उत्तर के कई देशों द्वारा इस्तेमाल किये गये तरीकों में बहुत सी समस्याएं है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

प्रकृति का वर्गीकरण

पहली समस्या प्रकृति के उस वर्गीकरण से संबंधित है जिसमें एक भाग का आर्थिक मूल्य है अथवा, जैसा कभी कभी अर्थशास्त्री कहते हैं, वैकल्पिक प्रयोग हैं और दूसरा जिसका कोई आर्थिक मूल्य अथवा वैकल्पिक प्रयोग नहीं है। यह विचार कि प्रकृति के कुछ तत्वों का कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं है और इसलिए उनका कोई आर्थिक अथवा वित्तीय मूल्य नहीं है, अनुचित लगता है। यदि 'मूल्य' और 'प्रयोग' को अत्यंत संकीर्ण रूप से पारिभाषित किया जाये तो शायद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है। परंतु यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक जीवित अवयव जैवविविधता के एक विशिष्ट तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। अतः ऐसे किसी एक भी पौधे या प्राणी की कल्पना करना कठिन है जिसका कोई प्रयोग न हो।

मूल्य देना

प्रकृति के तत्वों को आर्थिक अथवा वित्तीय मूल्य देने का तरीका तो और भी कठिन है। दुर्भाग्यवश विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र केवल उन वस्तुओं और सेवाओं का प्रतिस्थापन मूल्य लगाता है जो आर्थिक प्रक्रिया में आगत या निर्गत हैं। अतः अर्थशास्त्रियों के लिए वह अमूल्य अथवा मूल्यरहित है। अर्थशास्त्र अमूल्य की धारणा के विषय में नहीं बोल सकता और इस कारण अधिकांश प्रकृति को मूल्यरहित ही मानता है।

उदाहरण के तौर पर, अर्थशास्त्र किस प्रकार एक ऐसे प्रजाति के पक्षी के अंतिम जोड़े का मूल्यांकन करेगा जिसकी वर्तमान में कोई आर्थिक क्रिया नहीं है? वर्तमान प्रणाली के अनुसार ऐसे जोड़े को साधारणतया बिना आर्थिक मूल्य का माना जायेगा। परंतु यही प्रजाति यदि जीवित रहे तो भविष्य में बहुत ऊंचा आर्थिक मूल्य हासिल कर सकती है। फिर भी, इस बात की निश्चित भविष्यवाणी न किये जा सकने के कारण कि ऐसा होगा या नहीं, मूल्य लगाना असंभव काम बन जाता है।

उत्तर-दक्षिण विभाजक

हालांकि प्रकृति के तत्वों का आर्थिक मूल्य लगाने की कठिनाइयां विश्व भर में समान रूप से पाई जाती हैं, फिर भी दक्षिण के देशों के लिए इसके निहितार्थ कहीं अधिक हैं। जहां उत्तर के देशों के अधिकांश लोगों के पास अपनी तत्कालीन बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद मनोरंजन और पर्यावरण संरक्षण जैसी दीर्घकालीन आवश्यकताओं पर खर्च करने की इच्छा पूरी करने के लिए पर्याप्त बचत होती है, वहीं दक्षिण के देशों में ऐसा नहीं है। यदि वर्तमान में प्रचलित कई प्रणालियों के अनुरूप पर्यावरण के मूल्य का निर्धारण बाज़ार शक्तियों के ज़रिये किया जाये तो इस बात की संभावना नहीं है कि भारत जैसे निर्धन देशों के लोग अपनी तत्कालीन आवश्यकताओं के होते दीर्घकालीन ज़रूरतों को चुनने की स्थिति में होंगे। परिणामस्वरूप बाज़ार शक्तियां किसी भी वस्तु को संरक्षित और सुरक्षित रखना मुश्किल कर देंगी।

साथ ही, दक्षिण के देशों में समाज के विभिन्न टुकड़ों के बीच तथा उत्तर और दक्षिण के बीच क्रय शक्ति में विशाल अंतर को देखते हुए यह सुनिश्चित करना कठिन है कि प्राकृतिक संसाधनों का सामाजिक तौर पर न्यायपूर्ण उपयोग हो। ऐसा विशेष रूप से उस स्थिति में होगा जब निर्णय पूरी तरह अथवा प्रमुख रूप से आर्थिक आधार पर लिये जायें।

प्रकृति का अवमूल्यन

आर्थिक संवृद्धि की आवश्यकता के दबाव तले सरकारों में प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रणालियों द्वारा अर्थव्यवस्था और सामान्य मानव कल्याण के क्षेत्र में किये गये योगदान का जानबूझ कर अवमूल्यन करने की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के तौर पर वन की मनुष्य द्वारा निर्मित उद्योग से तुलना की जा सकती है। जहां मानव निर्मित उद्योग को उत्पादक बनाने के लिए पूंजी, ऊर्जा, कच्चा माल, रखरखाव, पुनःस्थापन और श्रमशक्ति जैसे आगतों की आवश्यकता होती है, वहीं एक उद्योग के रूप में वन बिना इनमें से किसी की आवश्यकता के मानवजाति के लिए बेहद ज़रूरी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है। वह स्वयं अपनी ऊर्जा का निर्माण करता है, स्वयं अपना कच्चा माल उत्पादित करता है, स्वयं रखरखाव और पुनःस्थापन करता है और बिना किसी मानवीय आगत के अनंत काल तक चलता रहता है। इसके बावजूद वनों के लिए आकलित किया गया आर्थिक मूल्य उत्पादकता और पुनर्नवीकरण के इस चमत्कार को प्रतिबिंबित नहीं करता है।

समाधान

परंतु समाधान क्या है? शायद एक उपाय यह है कि बजटीकरण और लेखा की व्यय प्रणाली अपनायी जाये। इस प्रणाली के तत्वों का नीचे वर्णन किया गया है।

प्रथम, किसी भी प्राकृतिक साधन, जैसे पानी के लिए भौतिक तौर पर बजट बनाने तथा पर्यावरण और समाज की ज़रूरतें पूरी करने के लिए आबंटन करने की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ यह है कि एक नदी में अपने पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने और इसके लिए

अपने आपको साफ करने और जीवन चक्र के चलने में सहायता देने की क्षमता को बनाये रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रवाह सुनिश्चित करना होगा।

ऐसा किये जाने के बाद अतिरिक्त जल का नदी पर निर्भर जनसंख्या की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए आवंटन करना होगा। इसमें उनकी पेय जल की आवश्यकता और अन्य मूल ज़रूरतें शामिल हैं। यदि कुछ 'अतिरेक' पाया जाता है तो उसे बाज़ार शक्तियों के हवाले करना चाहिए और उसका उपयोग विभिन्न प्रतियोगी उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए।

एक ऐसे मॉडल में जहां पानी की औद्योगिक मांग है, वहां औद्योगिक क्षेत्र को कमी वाले मौसम प्रवाह बढ़ाने, जैसे अधिक जलप्राप्ति के लिए स्रवण–क्षेत्रों के पुनर्उद्धार करने, आदि के लिए कीमत अदा करनी होगी। ऐसी स्थिति में जल की वास्तविक लागत लिये जाने के कारण पानी बचाने वाली प्रौद्योगिकी में निवेश करने का आर्थिक प्रलोभन होगा।

बोध प्रश्न 3

1) पर्यावरण संबंधी प्रभाव आकलन क्या है?

.....

.....

.....

.....

2) प्राकृतिक संसाधन लेखा और बजटीकरण की कौन–कौन सी विधियाँ हैं?

.....

.....

.....

.....

12.5 सारांश

इस इकाई के आरंभ में हमने देखा कि 'विकास' शब्द का कई वर्षों तक किस प्रकार प्रयोग किया गया और किस प्रकार इसका अर्थ मात्र आर्थिक संवृद्धि से विस्तृत हो कर समानता (Equity) के साथ समृद्धि और अब सतत विकास में परिवर्तित हुआ। इसके बाद हमने 'वहन क्षमता' का विवेचन किया।

हमने देखा कि किस प्रकार प्रत्येक पारिस्थितिक प्रणाली की उत्पादन और समावेशन की क्षमता सीमित होती है। इन सीमाओं का उल्लंघन होने पर पारिस्थितिक प्रणाली अवक्रमित हो दुष्क्रिय (dysfunctional) बन जाती है। दुष्क्रिय पारिस्थितिक प्रणाली अपना योगदान नहीं बनाये रख पाती और धीरे धीरे मृतप्राय हो जाती है।

इसके आगे हमने चर्चा की कि किस प्रकार एक पारिस्थितिक प्रणाली की वहन क्षमता उन सीमाओं का निर्धारण करती है जिसके भीतर विकास प्रक्रिया सतत होती है।

फिर, हमने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर नज़र डाली और देखा कि किस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र को पर्यावरण स्नेही बनाया जा सकता है ताकि सतत विकास की ओर बढ़ा जा सके। हमने पाया कि क्षेत्रों को पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल बनाने से न केवल पर्यावरण को फायदा पहुंचता है बल्कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अर्थव्यवस्था को भी बढ़ावा मिलता है।

अंत में हमने दो रणनीतियों के विषय में बात की जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि विकास क्रियाएं, परियोजनाएं और नीतियां पर्यावरण स्नेही हों और इस प्रकार सतत विकास में सहायक बन सकें। इनमें से पहली रणनीति यानी पर्यावरण प्रभाव आकलन करने में शामिल था – पर्यावरण के विभिन्न तत्वों पर क्रियाओं, परियोजनाओं और नीतियों के प्रभाव का आकलन। आकलन के आधार पर इस विषय पर निर्णय लिया जा सकता है कि इनमें से कौन सा व्यवहार्य है।

प्राकृतिक संसाधन लेखा और बजट एक और रणनीति है जो हमें यह सुनिश्चित करने में सहायक है कि प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम रूप से आवंटन हो और उनका सतत उपयोग हो सके।

12.6 शब्दावली

अम्ल वर्षा : अम्ल द्वारा प्रदूषित जल वर्षा

जलसंबंधी (Aquafic) : जलीय, जल में या इसके निकट स्थित

जलमृत (Aquifer) : एक प्राकृतिक भूगर्भीय या अवसतही जलाशय

जैवअवक्रमण (Biodegrade) : किसी चीज को ऐसे अंशों में तोड़ना जिनका प्रकृति द्वारा समावेश किया जा सके

स्रवण-क्षेत्र (Catchment area) : वह क्षेत्र जहां से जल नदी, झील या अन्य जलाशयों में बहता है।

विकास : आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया जो समतापूर्ण और सतत हो

समुद्री : जो समुद्र से संबंधित हो

अपवाह : पानी का ढलान की ओर अथवा सतह से बहना

सतत विकास : विकास की ऐसी प्रक्रिया जो भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के सामर्थ्य के साथ समझौता किये बिना वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करती हो।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Human Development Report, 1998: United Nations Development Programme, Oxford unversity Press, Delhi.

Ismail Serageldin and Andrew Steer (editors) (1444) *Making Development Sustainable: From Concept to Action,* 1994, The World Bank, Washigton DC.

National Environmental Programmes – India, 1994, Ministry of Environment and Forests, Government of India, New Delhi.

National Strategy for Conservation and Sustainable Development, 1990, Report of the Core Committee, Ministry of Environment and Forests, Government of India, New Delhi.

Our Common Future (1987) The World Commission on Environment and Development, Oxford University Press, Delhi.

Report of the Steering Group on Environment, Forests and Development for the Formulation of the Eighth Five Year Plan, 1989, Planning Commission, Government of India, New Delhi.

Sustainable Development, 1995, Special Issue of The Administrator, Journal of the Lal Bahadur Shastri Academy of Administration, Mussoorie, New Age International (P) Limited, Publishers, New Delhi.

Towards Sustainable Development of Society – Imperatives and Perspectives, 1993, Special Issue of the Indian Journal of Public Administration (IJPA), Indian Institute of Public Administration, New Delhi.

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर एवं संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 12.2 पढ़ें और उत्तर दें।

2) भाग 12.2 पढ़ें और उत्तर दें।

बोध प्रश्न 2

1) उप–भाग 12.3.2 पढ़ें और उत्तर दें।

2) उप–भाग 12.3.4 पढ़ें और उत्तर दें।

3) उप–भाग 12.3.6 पढ़ें और उत्तर दें।

बोध प्रश्न 3

1) उप–भाग 12.4.1 पढ़ें और उत्तर दें।

2) उप–भाग 12.4.2 पढ़ें और उत्तर दें।